International Journal of Arts & Education Research

मेरठ परिक्षेत्र में प्रचलित प्रमुख शिक्षा संस्कारों का स्वरूप

[1]Dr. Satbeer Sharma, [2]Vivek Kumar Dwivedi
[1]Research Supervisor [2]Research Scholar
C.M.J.University Shilong Megahalaya

जब कोई बालक यौवन में पदार्पण करता है तो विशेष संस्कारों का अनुष्ठान सर्वकालिक तथा विश्वजनीय प्रक्रिया है। यज्ञ, संस्कार आदि कर्मकाण्ड भारतीय ऋषि–मुनियों द्वारा लम्बी शोध एवं प्रयोग–परीक्षण से विकसित क्रियायें हैं। यज्ञ कर्मकाण्ड द्वारा देय आह्वान, मंत्र प्रयोग, संकल्प एवं सद्भावनाओं की सामूहिक शक्ति से एक ऐसी ऊर्जा पैदा की जाती है, जिससे मनुष्य की आततायी अन्तपवृत्तियों को समाप्त कर इच्छित स्वरूप प्रदान किया जा सके।

उपनयन संस्कार का अर्थ :–

उप + नयन अर्थात् उप का अर्थ पास, नयन का अर्थ ले जाना। गुरू के पास शिष्य को ले जाना उपनयन संस्कार कहलाता है। अथर्ववेद में उपनयन शब्द का प्रयोग ''ब्रह्मचारी'' को ग्रहण करने के अर्थ में किया गया।

उपनयन मानो ब्रह्मचारिणम्।[1]

यहाँ इसका अर्थ आचार्य के द्वारा ब्रह्मचारी की वेद विद्या में दीक्षा से है। ब्राह्मण काल में भो उपनयन शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में किया जाता था। जैसा कि शतपथ–ब्राह्मण में इस ब्रह्मचारी के उपनयन वर्णन से स्पष्ट है।[2] सूत्रकाल में भी विद्यार्थी द्वारा ब्रह्मचर्य के लिए प्रार्थना और आचार्य द्वारा स्वीकृति ही संस्कार के केन्द्र बिन्दु थे। किन्तु परवर्तीकाल में उपनयन का रहस्यात्मक महत्व बढ़ने पर गायत्री मंत्र द्वारा द्वितीय जन्म की धारणा ने विद्या में दीक्षा के मूल विचार को आच्छादित कर लिया, जिसके परिणाम कुछ अलग हैं।

मनु के अनुसार द्वितीय जन्म (वैदिक या ब्रह्मजन्म) में जिसका प्रतीक मूंज से बनी मेखला को धारण करना है। सावित्री ब्रहम्चारी की माता ओर आचार्य पिता है।

यत्र यह ब्रह्मजन्मास्य मौस्जीबन्धनचिहिन्तम्।

तस्त्रास्य माता सावित्री पिता आचार्य उच्यते।।[3]

अनेक विद्वानों ने इस संस्कार का नाम ही ''सावित्रीवचन'' भी (सावित्री शिक्षा) किया है। याज्ञवल्वय के उपनयन शब्द से अन्तेवासी छात्र और गायत्री के बीच सम्पर्क अभिप्रेत है, जिसकी स्थापना आचार्य करता है।[4] इसके बाद समय धीरे–धीरे व्यतीत होने लगा और परिवर्तन आता गया और आगे चलकर इस शब्द का प्रयोग अभिभावकों द्वारा छात्र को आचार्य के निकट ले जाने क अर्थ में होने लगा। उपनयन का अर्थ हो गया वह क्रिया जिसके द्वारा बालक को आचार्य के समीप ले जाया जाये।

उपसमीपे आचार्यदीना बटोर्नयनं प्रापणमुपनयनम्।[5]

गृह्यसूत्रों में तत्सम्बन्धी नियमों के निर्धारण के पूर्व सूदीर्घकाल तक उपनयन एक ऐच्छिक संस्कार था। अध्ययन की इच्छा वाला कोई भी व्यक्ति गुरू के पास जाकर उपनयन संस्कार करा लेता था, जो अध्ययन के इच्छुक नहीं थे वे उपनयन संस्कार नहीं करवाते थे। उपनयन संस्कार केवल सुसंस्कृत एवं पुरोहित परिवारों में ही सीमित था, जो कि संकीर्ण धारणा थी। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि उपनयन संस्कार अनिवार्य नहीं समझा जाता था, अपितु यह जाति के पवित्र पुस्कालय में प्रवेश के लिए उत्सुक व्यक्तियों को उपलब्ध एक विशेषाधिकार था। समस्त युवकों को शिक्षित व जातिगत संस्कृति से परिचित और परिष्कृत करना था। ब्राहम्ण के लिए उपनयन संस्कार की समय सीमा अपेक्षाकृत कम थी। क्योंकि यह आर्य धर्म और संस्कृति का संरक्षक तथा आर्य जाति का विद्या गुरू माना जाता था।

अतः स्पष्ट था, कि सभी वर्ण के लिए उपनयन करने की आयु अलग–अलग निश्चित की गयी थी।

उपनयन की अनिवार्यता का प्र"न

आरम्भ में उपनयन संस्कार अनिवार्य नहीं था, क्योंकि गृह्यसूत्र और परवर्ती कर्मकाण्ड साहित्य यह मानकर चलते हैं कि उपनयन एक अनिवार्य संस्कार है, किन्तु सूत्रकाल क पूर्व ऐसी बात नहीं थी। यह संकेत अव"य लिया जा सकता है कि अथर्ववेद के समय उपनयन द्वितीय जन्म माना जाता था।

आचार्य उपनयनमानों ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः।

तं रात्रीरिस्तस्त्र उदरे विभर्ति तं जातं द्रुष्टुमभिसंयन्ति देवाः।।[6]

यह सम्भव है कि समाज के सभी द्विजों को अपना उपयुक्त स्थान उपनयन द्वारा ही प्राप्त होता था, किन्तु द्वितीय जन्म की धारणा केवल उपनयन संस्कार के सम्बन्ध में ही नहीं थी, अपितु यज्ञीय दीक्षा के साथ भी द्वितीय जन्म का सम्बन्ध स्थापित होता था।

अजातो ह वै तावत्पुलषों यावन्न यजते[1]।।

उपनयन संस्कार की आयु :–

उपनयन संस्कार के समय बालक की आयु कितनी होनी चाहिए, इस पर अलग–अलग मत दिये गये हैं। पारस्कर गृह्यसूत्र के अनुसार ब्राह्मण बालक की आयु आठ (8) वर्ष, क्षत्रिय की आयु ग्यारह (11) वर्ष तथा वैश्य की आयु बारह (12) वर्ष की होनी चाहिए।

अष्टवर्ष ब्राहम्णमुपनयेद् गर्भाष्टमेवा।

एकादशवर्षठराजन्यम्। द्वादशवर्ष वैष्यम्। यथामण्डलं या सर्वेषाम्।।[7]

गृह्यसूत्रों में प्रतिपादित तथा परवर्ती आचार्य द्वारा अनुमोदित साधारण नियम यह था कि ब्राह्मण का उपनयन आठवें वर्ष, क्षत्रिय का बारहवें वर्ष में करना चाहिए ।।[8]

उपनयन संस्कार को करने की अन्तिम सीमा ब्राह्मण के लिए सोलह (16) क्षत्रिय के लिए बाईस (22) और वैश्य के लिए चौबीस (24) वर्ष की आयु थी।।

उपनयन संस्कार को शारीरिक संस्कार का स्वरूप प्राप्त हो गया था चाहे जितने विलम्ब से क्यों न हो, संज्ञकार का अनुष्ठान करना अनिवार्य माना जाने लगा था। इसका मुख्य उद्देश्य समाज म उपनयन का प्रयोग एक विशेष संस्कार के अर्थ में किया जाता था। जो द्विजन्मा के विवाह के पूर्व किसी समय भी किया जा सकता था। इस अर्थ में इसे ''जनेऊ'' कहा जाता था।[9] यह संस्कृति एवं संस्कारों की पहचान बन गया।

उपनयन संस्कार की अनिवार्यता–

उपनयन संस्कार एक अनिवार्य संस्कार के रूप में किया जाने लगा था। उपनिषद काल के अन्त में उपनयन संस्कार अनिवार्य हो गया था। इसके मूल में अनेक कारण निहित थे। सर्वप्रथम इसकी पृष्ठभूमि में सांस्कृतिक कारण था। किसी भी प्रगतिशील सभ्यता के लिए शिक्षा आवश्यक है। शिक्षा को व्यापक करने के उद्देश्य से उपनयन संस्कार अनिवार्य कर दिया था। इसके द्वारा प्रत्येक समाज अपने जीवन का कुछ समय गुरूकुल या किसी शिक्षा संस्था में व्यतीत करने के लिए बाध्य कर दिया गया था। इसके फलस्वरूप शिक्षा, ज्ञान, विद्या में निरन्तर वृद्धि हो रही थी। विद्या की विविध शाखा विकसित हो चुकी थी। अतः पवित्र साहित्य की रक्षा के लिए उपनयन संस्कार को अनिवार्य कर सम्पूर्ण समाज का सहयोग प्राप्त करने का प्रयास किया गया।[10] इस कारण धर्म से भी लोग जोड़े गये। इससे यह सिद्ध हो गया था कि उपनयन में पवित्र करने की शक्ति निहित है। इससे स्पष्ट है कि उपनयन संस्कार करने से व्यक्ति ज्ञानवान, सभ्य, विद्यावान, एक सुन्दर पवित्र समाज का निर्माण करने में समर्थ होता था।

अनिवार्यता के अवांछनीय परिणाम –

उपनिषदकाल के अन्त में जब उपनयन संस्कार अनिवार्य हो गया था तो इसके अवांछनीय परिणाम भी हुए। लोग इसका यथार्थ प्रयोजन भूल गये तथा इसके आयोजन को सामाजिक स्थिति द"र्ाने का अवसर माना जाने लगा। सामाजिक रुप से इसके घातक परिणाम हुए। प्राचीन काल में जबकि यह एक विशुद्ध शैक्षिक संस्कार था, उपषिदों के काल के अंत तक आते आते यह संपत्ति प्रद"ान का कारक बन गया। शिक्षा के लिए जन्म से अयोग्य व्यक्तियों को उपनयन का विशेषधिकार प्राप्त नहीं था।

नोन्मत्तमूकान् संस्कुर्यात्।[11]

किन्तु जब यह दैनिक संस्कार के रूप में परिणत हो गया, तो इस मत का प्रतिपादन किया जाने लगा कि मूक, बधिर तथा अन्धे का भी उपनयन संस्कार करना चाहिए।[12] यह एक सामाजिक मर्यादा का प्रतीक बन गया। अतः इस बात से स्पष्ट है कि संस्कार की अनिवार्यता से अनेक घातक परिणाम हुए थे जैसा कि चौदहवी सदी के एक कन्नड़ अभिलेख से ज्ञात होता है कि एक ब्राह्मण ने पीपल के चार वृक्षों का उपनयन संस्कार किया था[13] जो एक नयी परम्परा व साच को प्रबल बनाता है।

आचार्य का चुनाव

उपनयन संस्कार करने से पहले आचार्य का चुनाव करना होता था। श्रेष्ठ से श्रेष्ठ आचार्य प्राप्त करने का यत्न किया जाता था, क्योंकि उपनयन का उद्देश्य ज्ञान की प्राप्ति तथा चरित्र–निर्माण था। यदि आचार्य स्वयं ही ज्ञान–सम्पन्न तथा उच्च–चरित्र का व्यक्ति न हो, तो बालक (विद्यार्थी) के जीवन का निर्माण नहीं कर सकता था। अतः कुलीन विद्यार्थी तथा आत्मसंयमी आचार्य की कामना की जाती थी।

तमसो वा एष तमः प्रविशति यम विद्वानु पन्यते।[14]

श्रुतवान, अभिजात, चरित्रवान तथा तप पूत ब्राह्मण को बालक का उपनयन करना चाहिए–

कुमारस्योपनयनं श्रुताभिजनवृत्तवान्।

तपसा धूतानिः शेषयात्मा कुर्याद् द्विजोन्तमः।।[15]

विधि–विधान एवं उनका महत्व

आरम्भ काल में उपनयन संस्कार अत्यन्त साधारण एवं सरल था। प्राचीन काल में वेदों का अध्ययन ब्राह्मण कुल में एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक क्रमबद्ध चलता था, पिता स्वयं ही गुरू का कार्य करते थे। जो यह बताता है कि प्रयोग की जाने वाली औपचारिकताएं सीमित रहती थी। पिता का अति प्राचीन आचार्यत्व उस पुराण कथा से भी सिद्ध होता है, जिसमें देवता, मनुष्य तथा दैत्यों द्वारा अपने सामान्य पिता प्रजापति के निर्देशन में ब्रह्मचर्य–जीवन व्यतीत करने का उल्लेख है।[16] उपनयन के कतिपय अन्य उदाहरण भी उपलब्ध होते हैं, जिनमें ब्रह्मचारी की मौखिक प्रार्थना तथा आचार्य द्वारा उसकी स्वीकृति मात्र पर्याप्त थी –

तुलनीय वाचा ह स्मैच पूर्व उपयन्ति।[17]

किन्तु वैदिक काल के अन्त तक उपनयन संस्कार जटिल रूप धारण करता जा रहा था। अथर्ववेद–कालीन उपनयन में परवर्ती कर्मकाण्ड के अनेक अंग विकसित हो गये थे। इस काल की विधि, यज्ञीय हवन, पूजा आदि का स्वरूप विस्तृत हो चुका था।

उपनयन का समय –

उपनयन संस्कार को करने के लिए समय निश्चित किया गया था, उसी समय उपनयन किया जाता है। जिस प्रकार भिन्न–भिन्न वर्ण के लिए भिन्न–भिन्न आयु सीमा को निश्चित किया गया है, उसी प्रकार उपनयन के समय का भी अलग–अलग वर्ण के लिए भिन्न–भिन्न समय को निश्चित किया गया था। साधारणतः उपनयन संस्कार उस समय किया जाता था, जब सूर्य उत्तरायण में रहता था।[18]

किन्तु वैश्य बालकों के लिए दक्षिणायन भी विहित था –

दक्षिणे तू विशां कुर्यात् ।[19]

ब्राह्मण का उपनयन संस्कार वसन्त ऋतु में, क्षत्रिय का ग्रीष्म में तथा वैश्य का शरद ऋतु में रथकार का उपनयन वर्षा ऋतु में होता था। अर्थात् विभिन्न वर्णों के लिए विभिन्न ऋतुएं निश्चित थी –

बसन्ते ब्राह्मणमुपनयति ग्रीष्मे राजन्यं शरदिवेश्यं वर्षासु रथकारमिति।[20]

परवर्ती ज्योतिष विषयक रचनाओं का माघ से आषाढ़ पर्यन्त विभिन्न मासों के साथ भिन्न–भिन्न गुणों का योग कर दिया गया था, जिस बालक का उपनयन संस्कार माघ मास में किया जाता है, वह समृद्ध होता है, जिसका उपनयन फाल्गुन मास में होता है, वह बुद्धिमान होता है। चैत्र में उपनयन होने पर वेदों में निष्णात तथा पारंगत होता है, वैशाखा में उपनयन करने से समस्त सुख–भोगों से सम्पन्न, ज्येष्ठ में प्राज्ञ तथा श्रेष्ठ और आषाढ़ में शत्रुओं का महान तथा विख्यात महापण्डित होता है :–

माघे मासि महाधनो धनपतिः प्रज्ञायुतः फाल्गुने।

मेधावी भवति व्रतो पनयने चैत्र च वेदान्वित।।

वैशाखे निखिलोपभोगसहितों ज्येष्ठो वरिष्ठो बुधस्त्वाषाढ़े।

समुध विपक्ष विजयी रप्याते महापण्डितः।।[21]

सूत्रकाल में उपनयन संस्कार

गृह्यसूत्रों के समय में उपनयन संस्कार पूर्णतः प्रतिष्ठित हो चुका था। इस काल में उपनयन संस्कार करना अनिवार्य हो गया था। सम्पूर्ण गृह्यसूत्र यह मानकर चलते हैं कि उपनयन शाश्वत तथा प्रत्येक ब्राह्मण के लिए अनिवार्य है। उपनयन संस्कार के कर्मकाण्ड का विकास गृह्यसूत्रों के समय तक पूर्ण हो चुका था। जहाँ तक कर्मकाण्ड का सम्बन्ध है, इसके विकास में धर्मसूत्रों का भी हाथ है। वे संस्कारों के सामाजिक अंगों को गृह्यसूत्रों द्वारा प्रदत्त सम्बन्ध सूत्र लेकर उन्हें आगे बढ़ाते हैं। उनमें उपनयन संस्कार के समय बालक की आयु संस्कार के अधिकारी ब्रह्मचारी के कर्त्तव्य और व्यवहार के विषय में पूरो जानकारी और विवेचन दिये गये हैं तथा अपने समय में प्रचलित अनेक प्रथाओं का समावेश भी उनमें कर दिया गया है।

सूत्रकाल में विद्यार्थी द्वारा ब्रह्मचर्य के लिए और आचार्य द्वारा उसकी स्वीकृति ही संस्कार के केन्द्र बिन्दु थे। सूत्रकाल के प्रारम्भ के समय में ही उपनयन संस्कार को आवश्यक समझा जाने लगा और उपनयन संस्कार सभी के लिए अनिवार्य कृत्य के रूप में किया जाने लगा था, जो अति आवश्यक बन गया था।

उपनयन संस्कार का सूत्रकाल में विस्तार हुआ। आश्वलायन गृह्यसूत्र में उपनयन की विधि पर प्रका"ा डालागया है। विद्यार्थी उत्तरीय और वास पहनकर, सिर के केश कटवा कर, मेखला और दण्ड धारण करके उपनयन के लिये आचार्य के सम्मुख बैठकर उसका हाथ पकड़ता था और आचार्य हवन की अग्नि के उत्तर की ओर अपना मुख पूर्व में करने आज्य–होम करता था। फिर आचार्य अपनी और विद्यार्थी की अंजलि जल से भरकर ऋग्वेद मंत्र पढ़ता था।

तत्सवितुर्वृणीमहे वयं देवस्य भोजनम्।

श्रेष्ठ सर्वजातमं तुरं भगस्य धीमहि।।[22]

(हम लोग सविता देय के भोजन को प्राप्त कर रहे हैं। वह श्रेष्ठ है, सबका पोषक है, रोगनाशक है।)

कर्मकाण्डों के द्वारा उपनयन की विधि को पूर्ण करते थे। बाद में बालक सूत्र में आचार्य के समीप रहकर वेद का अध्ययन करता था। इस युग में उपनयन के साथ यज्ञोपवीत भी धारण कराया जाता था। यज्ञोपवीत अर्थात् जनेऊ इसे व्रतबन्ध भी कहते हैं। बालक की आयु सूत्रकाल में उपनयन के लिए निश्चित कर दी गयी थी तथा उपनयन संस्कार में ही बालक को यज्ञोपवीत धारण कराया जाता था। आचार्य बालक को यज्ञोपवीत पहनाते हैं और मंत्र उच्चारण करते थे–

यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्थत्सहजं पुरस्तात्।

आयुष्यमग्रयं प्रतिमुज्वशुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः।।[23]

यज्ञोपवीतमसि यज्ञस्य त्वा यज्ञोपवीतेनोपनहामि।[24]

धर्मसूत्र गृह्यसूत्रों से घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध है और सम्भवतः उसी क्रम में इनकी रचना हुई है। प्रायः हिन्दू धर्म शब्द से उचित कर्त्तव्य विधि और धार्मिक प्रथाओं तथा प्रचलनों का तात्पर्य समझते हैं। अतः अनेक स्थलों पर धर्मसूत्रों तथा गृह्यसूत्रों के वर्ण–विषय एक दूसरे में समाविष्ट हो जाते हैं। गृह्यसूत्र घरेलू विधि–विधानों का वर्णन करते हैं जिनके अनुष्ठान की प्रत्येक गृहस्थ से अपेक्षा की जाती थी, जबकि धर्मसूत्रों में हिन्दू समाज के सदस्य के नाते मनु के व्यवहार के नियमों का निरूपण किया गया है और वे किसी भी प्रकार के कर्मकाण्डीय क्रिया–कलापों का वर्णन नहीं करते। धर्मसूत्र वर्ण और आश्रम का निरूपण करते हैं। आश्रम–धर्म के अन्तर्गत उपनयन संस्कार से सम्बद्ध नियमों का विशद वर्णन किया गया है। इनमें उपनयन, उपाकर्म, अनध्याय, अशौच, श्राद्ध नियमों का भी समावेश है। यह धर्मसूत्र, उपनयन संस्कार के सभी विधि–विधान का सविस्तार निरूपण करते हैं जिनको ओर गृह्यसूत्रों में संकेत मात्र किया गया है। गौतम–धर्मसूत्र के अनुसार–''वेद तथा वेदविदों की स्मृति और शील धर्म के मूल हैं।'' अन्य धर्म सूत्र इस मत का समर्थन करते हैं –

वेदों धर्ममूलम्। तद्विदाश्च स्मृतिशीले।[25]

शास्त्रीय दृष्टि से उपनयन संस्कार गृह्यसूत्रों के विषय क्षेत्र के अन्तर्गत आते हैं। किन्तु यहाँ भी संस्कार शब्द का प्रयोग उसके वास्तविक अर्थ में उपलब्ध नहीं होता। वैखानस स्मार्तसूत्रों में दैहिक संस्कारों तथा विभिन्न अवसरों पर देवाराधना के लिए सम्पन्न किये जाने वाले यज्ञों में अपेक्षाकृत स्पष्ट विभेद स्थापित किया गया है। सभी गृह्यसूत्रों में और श्रौत यज्ञों को जिनका ब्राह्मणों और श्रोत सूत्रों में विशद वर्णन किया गया है।

उपनयन संस्कार अन्य प्रमुख सांस्कृतिक अवसरों पर ब्रह्मचारी के लिए सद्गुणों की प्राप्ति और दुर्गुणों के निवारण में सहायता के लिए प्रार्थना करता है। इस प्रकार आराधना का उपयोग नैतिकता के संवर्धन के लिए किया जाने लगा था। उपनयन संस्कार में बौद्धिक चेतना, पवित्रता तथा ब्रह्मचर्य आदि के लिए प्रार्थनाएं की जाती थी। प्रसिद्ध और पवित्रमय गायत्री मंत्र में कहा गया है कि इस स्त्रष्टा (सूर्य) देव के वरणीय तेज का आराधना करें, वह ईश्वर हमारी बुद्धि को सन्मार्ग से प्रेरित करे, जिससे हमें तन, मन एवं धन की प्राप्ति हो सके।

तत्सवितुर्ववरेण्य भर्गो देवस्य धीमहि।

धियो यो नः प्रचोदयात्।।[26]

आहुति देते समय विद्यार्थी प्रार्थना करता है, हे अग्ने! मुझे अन्तर्दृष्टि प्रदान करो, स्मरण शक्ति प्रदान करो, मुझे गौरवशील बनाओ, मुझे तेजस्वी और दीप्तिमान बनाओ आदि।[27] ब्रह्मचारी अपने कटि–प्रदेश में मेखला बाँधते हुए कहता है, देवताओं की भगिनी स्वरूप कीर्तिमती यह मेखला अपशब्दों (दुरूक्त) का निवारण करती है, यह मेरे वर्ण को पवित्र और शुद्ध रखती है, अतः मैं इसे अपने कटि–प्रदेश के चारों ओर बाँधता हूँ, यह प्राण और अपानवायु को बल और शक्ति प्रदान करती है–

इयं दुरूक्तं परिबाधमाना वर्ण पवित्रं पुनती म आगात्।

प्राणापानाभ्यां बलमादधाना स्वसा देवी सुभगा मेखलेयम्।।[27]

अर्थात् आचार्य बालक को कौपीन मेखला धारण कराते थे और वह ब्रह्मचारी के नियम और कर्त्तव्यों का पालन करने का भी आदेश देते थे, कि ब्रह्मचारी को अपने कर्त्तव्य का पालन करना चाहिए। बालक भी गुरू के पास उनके आश्रम में रहकर उनकी आज्ञा का पालन करना अपना मूल कर्त्तव्य मानते थे। इसके बाद वह ब्रह्मचारी का हाथ पकड़कर अनेक ऋचाओं का उच्चारण करता हुआ उसकी रक्षा के लिए देवताओं से प्रार्थना करता था। वह उसके आचार और व्यवहार के मार्गदर्शन के लिए पांच आज्ञाऐं भी (पंच यमों के पालन का आदेश) देता था। तब ब्रह्मचारी को गायत्री मंत्र का उपदेश दिया जाता था और आचार्य तीन दिनों तक पूर्णतः संयम (यम और नियम) का पालन करता था, जब आचार्य ने किसी ब्राह्मण को अपने ब्रह्मचारी के रूप में प्राप्त कर लिया हो, तो उसे मैथुन आदि नहीं करना चाहिए। उपर्युक्त पद्धति वह आदर्श है, जिनके आधार पर उत्तरवर्ती विधि विकसित हुई।[28] सूत्रकाल के अनुसार उपनयन संस्कार के लिए आयु के साथ–साथ समय भी निश्चित किया गया है। आचार्य बालक का उपनयन शुभ समय, तिथि एवं मुहुर्त में कराते थे। संस्कार सम्पन्न करने के लिए कोई शुभ समय नियत कर लिया जाता था। साधारणतः उपनयन संस्कार उस समय होता था, जब सूर्य उत्तरायण में रहता था।[29] गृह्यसूत्र पूर्णतः विकसित विधि–विधानों का विशद् वर्णन करते हैं। विकास–क्रम में अनेक अवैदिक तथा अलौकिक तत्व भी इसमें समाविष्ट हो गये। सूत्रकाल में उपनयन का विस्तृत वर्णन मिलता है।

सूत्रकाल में ब्राह्मण का उपनयन संस्कार बसन्त ऋतु में, क्षत्रीय का शरद ऋतु में तथा वैश्य का ग्रीष्म ऋतु में निश्चित किया गया–

बसन्ते ब्राह्मणमुपनयति ग्रीष्मै राजन्यं,

शरदि वैश्यं वर्षासु रथकारमिति।[30]

इस काल में आचार्य बालक को कौपीन, मेखला तथा दण्ड धारण कराते थे और सावित्री का उपदेश देते थे। इस काल में बालक आश्रम में रहते थे और शिक्षा ग्रहण करते थे, गुरू की आज्ञा का पालन करना ब्रह्मचारी अपना कर्त्तव्य मानते थे। आचार्य अपने शिष्य का उपनयन संस्कार करते थे, तभी यज्ञोपवीत धारण करा देते थे। ब्रह्मचारी को यज्ञोपवीत धारण कराते हुए आचार्य उपयुक्त मंत्र का उच्चारण करता था, जिसमें बालक के आयुष्य, बल तथा तेज के लिए प्रार्थना की गई है। ब्रह्मचारी के लिए एक ही उपवीत धारण करने की प्रथा थी तथा गृहस्थ को दो उपवीत धारण करने का प्रावधान है, एक स्वयं के लिए तथा दूसरा पत्नी के लिए। गायत्री

मंत्र के पश्चात् यज्ञीय अग्नि को प्रथम बार प्रदीप्त करने तथा उसमें आहुति डालने का कृत्य किया जाता था।[31] इस अवसर पर उच्चारित मंत्र शैक्षणिक दृष्टि से महत्वपूर्ण थे। अतः इससे स्पष्ट है कि सूत्रकाल में उपनयन संस्कार का महत्व चर्मोत्कर्ष पर था।

स्मृति ग्रन्थों में उपनयन

संस्कार समाज की प्राचीनतम् प्रक्रिया है जो व्यक्ति के व्यक्तित्व को संस्कारवान बनाती है। संस्कार का उल्लेख वेदों, उपनिषद, गृह्यसूत्रों तथा स्मृतियों में भली–भांति हुआ है, परन्तु बालक के सर्वांगीण विकास के लिए उपनयन संस्कार महत्वपूर्ण संस्कार के रूप में किया जाता था। जिस समय सूर्य उत्तरायण में रहता था, उस समय कोई शुभ दिन यह संस्कार के लिए निश्चित कर लिया जाता था। आरम्भ में बालक को स्नान कराकर तथा सुन्दर वेशभूषा से अलंकृत किया जाता था, इसके बाद वेदों के मंत्रोच्चारण के साथ उपनयन करना प्रारम्भ किया जाता था। इसका मूल उद्देश्य युवक को नागरिक कर्त्तव्यों का क्रियात्मक रूप से निर्वाह करने के योग्य बनाना है।

इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए जाति के नवविकसित पुष्पों को अनुशासित किया जाता है, जिससे वे सभ्यता व संस्कृति की रक्षा का भार उठाने योग्य हो सके। इस प्रकार प्रकृत संस्कार का उदय समुदाय की नागरिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए हुआ। धीरे–धीरे इस पर भी धर्म का रंग चढ़ता गया। आरम्भिक जीवन का प्रत्येक अंग धार्मिक भावनाओं से ओत–प्रोत था, और धार्मिक अभिस्वीकृति द्वारा ही किसी सामुदायिक कृत्य की मान्यता प्राप्त हो सकती थी। परवर्ती स्मृतिकार हारीत के अनुसार सार यज्ञों का समावेश दैव संस्कारों और मनुष्य जीवन के विभिन्न अवसरा पर किये जाने वाले संस्कारों के अन्तर्गत करना चाहिए ।

स्मृतियाँ धर्मसूत्रों के परवर्ती तथा सुव्यवस्थित विकास का प्रतिनिधित्व करती हैं। धर्म सूत्रों की तरह वे भी मुख्यतः कर्मकाण्ड की अपेक्षा अनुष्य के सामाजिक व्यवहार से ही सम्बन्धित हैं। उनके वर्ण विषयों का वर्गीकरण आचार व्यवहार और प्रायश्चित इन तीन शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है। प्रथम शीर्षक के अन्तर्गत संस्कार और उसकी विधियाँ दी गयी हैं तथा उनसे सम्बन्ध रखने वाले नियमों का उल्लेख है। स्मृति ग्रन्थों में उपनयन संस्कार का सर्वाधिक और पूर्ण वर्णन किया गया है, क्योंकि इस संस्कार से व्यक्तिगत जीवन के प्रथम और द्वितीय सोपान प्रारम्भ होते हैं। पंच–महायज्ञों का भी स्मृतियों में मुख्य स्थान है। मनुस्मृति इन्हें अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान देती है और इनका विस्तृत निरूपण करती है।[32] स्मृति ग्रन्थों से हमें स्तुतियों, यज्ञों, ब्रह्मचारी के कर्त्तव्यों, अध्यात्म सम्बन्धी धारणाओं तथा बालक के शिक्षा–दीक्षा के विषय में विस्तृत जानकारी प्राप्त होती है। इन स्मृतियों में अधिकारी कर्त्तव्य, छोटे–छोटे विधि–विधानों तथा क्रियाओं और जीवन के विविध अवसरों पर विविध पौराणिक देवाताओं के अर्चन आदि ऐसे विषयों की चर्चा है, जिनके सम्बन्ध में गृह्यसूत्र और धर्मसूत्र प्रायः मौन है। किन्तु सभी स्मृतियों में संस्कारों का निरूपण नहीं किया गया है। कतिपय स्मृतियों में केवल व्यवहार या विधि का ही निरूपण हुआ है, यथा–नारद स्मृति, कुछ स्मृतियाँ प्रायश्चितों के वर्णन तक ही अपने को सीमित रखती हैं, जैसे–पाराशर स्मृति। उपनयन संस्कार का वर्णन लगभग सभी स्मृतियों में मिलता है। स्मृतियों में उपनयन संस्कार का वर्णन विधि–विधान स्पष्ट रूप से किया गया है तथा सभी स्मृतियों में उपनयन संस्कार को महत्वपूर्ण संस्कार के रूप में स्वीकार किया है।

याज्ञवल्क्य स्मृति के अनुसार उपनयन संस्कार व्यक्ति के व्यक्तित्व के लिए महत्वपूर्ण संस्कार के रूप में किया जाना चाहिए, परन्तु वैदिक स्वाध्याय का ह्रास तथा समावर्तन पर विशेष बढ़ा दिया।[33]

गौतम–स्मृति अपने चरण के अनुसार चालीस संस्कारों का परिगणन करती है, यद्यपि वह इस तथ्य से अपरिचित नहीं है कि वैदिक यज्ञ–व्यवहार से दूर हो गये थे और दैव–संस्कार अब वास्तविक संस्कार नहीं माने जाते थे।[34] अर्थात् गौतम स्मृति में उपनयन संस्कार का विस्तृत उल्लेख नहीं मिलता है परन्तु मनुस्मृति में इसका विशद वर्णन मिलता है। मनु के अनुसार भिन्न–भिन्न आयु निश्चित की गयी थी। मनुस्मृति याज्ञवल्क्य स्मृति आदि के अनुसार ब्राह्मण की आयु गर्भ से आठ वर्ष, क्षत्रिय की आयु (11) तथा वैश्य की आयु (12) वर्ष निश्चित की गयी थी।[35] क्योंकि ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्यों की सावित्री क्रमशः आठ, ग्यारह, बारह अक्षरों को होती है। अतः ब्राह्मणों में इन्हीं के आधार पर तीन उच्चतर वर्णों के उपनयन की आयु क्रमशः आठ, ग्यारह, बाहर वर्ष निश्चित कर दी थी–

ब्राह्मणादिवर्णसम्बन्धिनां छन्दसां सादाक्षरसंत्यैक पनयनस्य विधिः।[36]

वे अपने मत की पुष्टि के लिए मेधातिथि और वीरमित्रोदय को उद्घृत करते हैं।[37] कतिपय अन्य विद्वानों के अनुसार यह भेद ब्राह्मणों की बौद्धिक उच्चता पर आधारित था। जिस प्रकार भिन्न–भिन्न वर्ण के लिए आयु निश्चित की गयी थी, उसी प्रकार भिन्न–भिन्न वर्ण के लिए यज्ञोपवीत का सूत्र भी निश्चित किया गया था।

स्मृतियों के अनुसार ब्राह्मण के लिए कपास का, क्षत्रिय के लिए सन का तथा वैश्य के लिए भेड़ के ऊन का उपवीत धारण करना चाहिए–

कापसिमुपवीतं स्याद् विप्रस्योर्ध्व वृतं त्रिवृत।

शास्त्रसूत्रमयं राज्ञो वैश्यस्याविकसूत्रजम्।।[38]

बालक का द्वितीय जन्म उपनयन संस्कार से होता है, तभी वह पवित्र और द्विज कहलाता है। द्वितीय जन्म (वैदिक या ब्रह्मजन्म) जिसका प्रतीक मूंज से बनी मेखला का धारण करना है, सावित्री ब्रह्मचारी की माता और आचार्य पिता है।

तत्र यद् ब्रह्मजन्मास्य मौज्जीबन्धन निहितम।

तस्त्रास्य माता सावित्री पिता त्वाचार्य उच्यते।।[39]

अनेक लेखकों ने इसे सावित्री शिक्षा नाम दिया है। उपनयन शब्द का प्रयोग एक विशेष संस्कार के अर्थ में किया जाता था, जो द्विजन्मा के विवाह के पूर्व किसी समय भी किया जा सकता था। इस अर्थ में इसे 'जनेऊ' कहा जाता था। जिसका अभिप्राय उस संस्कार में बालक को यज्ञोपवीत पहनाया जाता था। जिससे उसके अन्दर एक संस्कार की भावना उत्पन्न हो सके।

याज्ञवल्क्य के अनुसार उपनयन का सर्वोच्च प्रयोजन वेदों का अध्ययन करना है, महात्यावृत्तियों से शिष्य का उपनयन कर गुरू को उसे वेद, आचार और शील (शौच) की शिक्षा देनी चाहिए–

उपनीय गुरूः शिष्यं महात्याहूतिपूर्वकम्।

वेदमध्यापयेदेनं शौचाचारांश्च शिक्षयेत्।।[40]

मनु के अनुसार उपनयन संस्कार करना अति आवश्यक है क्योंकि इस संस्कार को करने से बालक के लौकिक तथा पारलौकिक जीवन को पवित्र किया जा सकता है।

उपनयन संस्कार को करने के लिए सबसे बड़ी समस्या थी कि उपनयन किस आयु वर्ष में किया जाये? इस समस्या के समाधान में स्मृतिया में कहा गया है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य के लिए है।

किन्तु समस्त वर्णों के लिए कपास का यज्ञोपवीत विकल्प के रूप में विहित था। ऐसा प्रतीत होता है कि कपास का सूत्र प्राप्त करने में सरलता रही होगी। यज्ञोपवीत के पश्चात् बालक को दण्ड दिया जाता था। मनु के अनुसार यह दण्ड ऋजु, अव्रण, सौम्यदर्शन, अनुइंगकर तथा अग्नि से जला हुआ नहीं होना चाहिए–

ऋजवस्ते तु सर्वे स्युरव्रणाः सौम्यदर्शनाः।

अनुद्वेगकरा नृणां सत्वचोऽनग्नि दूषिता।।[41]

अर्थात् मेखला, कौपीन, दण्ड धारण कराकर बालक को गुरू के पास उनके आश्रम में रहना होता था। गुरू के पास रहकर गुरू सावित्री की शिक्षा (उपदेश) देते थे। सावित्री मंत्र का उपदेश बालक के द्वितीय जन्म का सूचक था, क्योंकि आचार्य बालक का पितृस्थानीय और सावित्री मातृस्थानीय मानी जाती थी। दोनों के सकारात्मक सम्बन्ध पाया जाता था। अर्थात् स्मृति ग्रन्थों के अनुसार उपनयन संस्कार का विस्तृत वर्णन सभी स्मृति में मिलता है। स्मृति काल के समय उपनयन संस्कार का विकास पूर्ण रूप से हो चुका था और उपनयन संस्कार सभी के लिए अनिवार्य संस्कार के रूप में किया जाने लगा था।

स्मृति ग्रन्थों को प्रायः लेखक धर्मशास्त्र का पर्यायवाची मानते हैं। स्मृति ग्रन्थों में प्रायः राजा प्रज्ञा के अधिकार, कर्त्तव्य, सामाजिक आचार विचार व्यवस्था, वर्णाश्रम धर्म, नीति, सदाचार और शासन सम्बन्धी नियमों की व्यवस्था का वर्णन है। स्मृति ग्रन्थों में मनुस्मृति को प्रायः अन्तिम प्रमाण माना गया है। कुछ स्मृतियाँ तो उसी की सामग्री को हेर–फेर करके लिखी गयी हैं।[42] अधिकांश स्मृति ग्रन्थों की रचना 600 ई0पू0 से प्रथम शताब्दी ईसवी के मध्य हुई थी। कुछ स्मृति ग्रन्थों को इस काल के बाद रखा जाता है।[43] कुछ विद्वान शुंग काल को स्मृतियों की रचना और प्रथम शताब्दी ईसवीं को उनके विकास का युग मानते हैं।

वैज्ञानिक ज्ञान की विलुप्त परम्परा को सुरक्षित रखने और ज्ञान को स्त्रोतों के गति प्रदान करने हेतु उत्तर वैदिक काल में स्मृति ग्रन्थों की रचना की गयी। प्रायः विद्वान स्मृति ग्रन्थों के प्रणयन का काल 600–700 ई. पू. से 2000 ई. पू. के मध्य मानते हैं। इस प्रकार इस बात की सम्भावना है कि अधिकांश स्मृति ग्रन्थों की

रचना पाणिनी के समय या उसके कुछ आगे–पीछे हुई थी[44]। स्मृतियों की रचना होने तक उपनयन संस्कार पूर्णतया प्रतिष्ठित हो चुका था। उनमें संस्कार के नियम एवं उपनियम और कर्मकाण्ड का पूर्ण विवरण मिलता है। विशष रूप से उपनयन के समय बालक की आयु, संस्कार के अधिकारी व्यक्तियों, ब्रह्मचारी के कर्त्तव्य और व्यवहार (आचरण) का विस्तृत विवेचन स्मृतियों की विषयवस्तु में समाविष्ट है।[45]

मनुस्मृति उपनयन संस्कार की दृष्टि से विशेष महत्व रखता है। स्मृति काल के दिनों में उपनयन संस्कार से मनुष्य द्विजत्व को प्राप्त होता था। किन्तु सभी लोगों के लिए यह संस्कार अनिवार्य नहीं था, दूसरे शब्दों में स्मृतियों के नियम की रचना के समय से पूर्व तक उपनयन संस्कार ऐच्छिक संस्कार ही था।[46]

मध्यकाल से आधुनिक काल तक उपनयन

उपनयन संस्कार को ही द्विजत्वघायक माना गया है, इसका विवेचन शास्त्रों में अनेकत्र हुआ है। यज्ञोपवीत के समय बटु अर्थात विद्यार्थी सर्वात्मना आचार्य को समर्पित हो जाता है और वह उसे नया जन्म देता है। माता–पिता के द्वारा तो बटुक के स्थूल–शरीर का ही निर्माण होता है। उसका संस्कारात्मक शरीर निर्मित होता है इसके उपनेता आचार्य को बटुक का उपनयन करने से पूर्व स्वयं त्रिरात व्रत रखना होता है, इन दिनों में भावनाएं ऐसी बनी रहती हैं मानो वह स्वयं बटु को (नया) जन्म दे रहा है। उपनयन संस्कार मानव जीवन के लिए बहुत महत्व रखता है इसलिए उपनयन संस्कार प्रत्येक व्यक्ति का होना चाहिए।

मध्यकाल में उपनयन संस्कार

प्राचीन काल में उपनयन संस्कार का बहुत महत्व था। जब तक कि हिन्दुओं पर वैदिक संस्कृति का कठोर नियन्त्रण था, उस समय तक उपनयन की अनिवार्यता का नियमित रूप से पालन किया जाता रहा। परन्तु भारतीय इतिहास के मुस्लिम काल में हिन्दू–धर्म को गम्भीर आघात पहुँचा। हिन्दुओं का धार्मिक जीवन संकट पूर्ण हो गया और उच्च तथा समृद्ध क्षत्रिय और वैश्य परिवार साधारण कृषकों की स्थिति को प्राप्त हो गये। यह मत प्रचलित हो गया कि कलियुग में क्षत्रिय और वैश्य है ही नहीं –

कलावघन्तयोः स्थितिः।[47]

यद्यपि यह विचार व्यापक रूप से मान्य न हो सका, किन्तु अनेक देशों में अधिकांश क्षत्रियों तथा वैश्यों में उपनयन संस्कार का त्याग कर दिया। साथ ही आधुनिकता की ओर पलायन करना शुरू कर दिया। मध्यकाल में मुगल साम्राज्य स्थापित हो गया, जिसके फलस्वरूप हिन्दुओं के धर्म की उपेक्षा की जाने लगी। हिन्दुओं को जबरदस्ती मुस्लिम बनने के लिए मजबूर किया गया, जिससे उनके धर्म का धीरे–धीरे पतन होने लगा। मध्यकाल में उपनयन संस्कार का महत्व धीरे–धीरे घटने लगा। जिसका मुख्य कारण मुस्लिम समाज रहा।

आधुनिक काल में उपनयन संस्कार

संस्कार परम्परा के सम्यक् निर्वाह के अभाव में आज राष्ट्र में साक्षर जन–समुदाय और उनमें भी सुशिक्षित वर्ग की संख्या न्यून होती जा रही है। निरक्षरता के निवारण के लिए अथक प्रयास व अपार धनराशि के व्यय होने पर भी निरक्षरता में कहीं कोई न्यूनता आती दिखाई नहीं दे रही। पूर्व का समय था जब कोई भी व्यक्ति तथा अधिसंख्यक ग्रामवासी भी साक्षर व सुशिक्षित होते थे, किन्तु अंग्रेजों के शासन में यह विकट समस्या हो गई। पाश्चात्य सभ्यता और जीवन पद्धति के भारत में प्रवेश के साथ–साथ हिन्दू अपनी परम्पराओं और संस्कृति से ज्यों–ज्यों विमुख होने लगे त्यों–त्यों हमारी निरक्षरता भी बढ़ने लगी। साथ ही अनुशासन एवं सदाचार विलुप्त होते गये।

किन्तु हिन्दू धर्म में विद्या का उद्देश्य केवल साक्षर बना देना या 'थ्री आर' सिखा देना ही नहीं था अपितु मानव में सच्चरित्रता आदि मानवीय गुणों व मूल्यों का करना था। आज का मानव अपने लिए अधिकाधिक–सुख, सुविधा जुटाने की दौड़ में लगा हुआ है। वह यह जानता है कि धन ही एक ऐसी वस्तु है जिनसे सभी सुख–सुविधा से सम्पन्न हो सकता है। मनुष्य को यदि जब धन मिल जाए तो उसका उपयोग वह अपने ही लिए नहीं अपितु उसे धर्म अर्थात् लोकोपकार, शिक्षा तथा समाज–सेवा आदि के कार्यों में लगाया जाये, परन्तु ऐसा भी नहीं है। क्योंकि संस्कारों के नाम पर तो केवल औपचारिकताऐं मात्र रह गयी हैं। मनुष्य कर्म ही पूजा के स्थान पर धन ही पूजा पर ध्यान केन्द्रित कर रहा है।

आधुनिक समय में लोगों के पास स्वयं की व्यवस्ताएं इतनी हैं कि वह संस्कार करके अपना समय बर्बाद नहीं करना चाहते। उपनयन संस्कार की आवश्यकता होने पर व्यक्ति विवाह के समान किसी उचित दिन यह संस्कार पूर्ण कर लेते हैं। यह केवल समय बचाने के चक्कर में संस्कृति एवं संस्कारों का भी हनन है।

प्राचीन भारत पर जब तक हिन्दू शासकों का समाज पर नियंत्रण रहा उपनयन संस्कार द्विजत्व प्राप्ति का महत्वपूर्ण साधन रहा, किन्तु मध्यकाल के भक्ति आन्दोलन के परिणाम–स्वरूप उपनयन सहित सभी संस्कारों पर गहरी चोट की गयी। इसके अलावा मुस्लिम शासकों की आर्थिक नीतियों के परिणामस्वरूप समृद्ध जीवन व्यतीत करने के लिए बाध्य हो गये[48]। समाज में यह विचार भी लोकप्रिय हो गया कि कलियुग में वैश्य और क्षत्रिय है ही नहीं इसलिए लोग धीरे–धीरे उपनयन संस्कार के प्रति उदासीन होने लगे।[49] परन्तु इसके पश्चात् भी उपनयन संस्कार का महत्व समाज में अभी भी बना हुआ था। उपनयन संस्कार के सम्बन्ध में अल्वेरूनी लिखता है कि ''जब आचार्य उसे (बालक को) शिक्षा देने, उसे कर्त्तव्य सिखाने, उन पर स्थिर रहने तथा जीवन पर्यन्त उन पर चलने के लिए निर्देशित करने आते हैं, तब वे उसकी कमर में सूत्र (करधनी) बाँधते हैं और यज्ञोपवीत का एक जोड़ा अर्थात नौ इकहरे तन्तुओं (सूत्रों) से इकट्ठी बँटी हुई मजबूत डोरी तथा कपास से निर्मित यज्ञोपवीत देते हैं। यज्ञोपवीत पहनने पर बायें कन्धे से दायें कूल्हें तक जाता है। विद्यार्थी तिहरे यज्ञोपवीत की कपास की इकहरी डोरी से अपने को लपेटता है। यह कार्य तब सम्पन्न होता है जब उसकी आयु का 12वां वर्ष समाप्त हो चुका है। इसके पश्चात् उसे दण्ड प्रदान किया जाता है, जिससे वह संग्राम कर पाये। दायें हाथ की अनामिका उंगली में पहनने वाली अंगूठी पवित्री का ध्येय यह है कि जो उस हाथ से दान करे वह मंगलमय हो।

''अल्बेरूनी के उपर्युक्त विचार धर्मशास्त्र का मानों समर्थन करते हुए और उपनयन संस्कार की समाज में विद्यमानता पर प्रकाश डालते हैं। इन विचारों से उपनयन संस्कार का महत्व दृष्टिगोचर होता है। अल्बेरूनी लिखता है कि यदि वह (ब्रह्मचारी) खाते समय या किसी प्राकृतिक आवश्यकता को पूरा करते समय यज्ञोपवीत को उतार देता है, तब वह ऐसा पाप करता है जो प्रायश्चित के किसी कर्म और दान उपवास के बिना नहीं छूट सकता। जो कि एक भ्रान्ति बन गया।

आधुनिक काल में विशेष रूप से अंग्रेजों के भारत आगमन के पश्चात् 19वीं शताब्दी में कई धर्म सुधार आन्दोलन हुए। ब्रह्म समाज के संस्थापक ने भारतीय समाज को नारा दिया ''वेदों की ओर लौटो।[50] स्वामी दयानन्द चाहते थे कि वह आधुनिक भारत के पथ भ्रष्ट बच्चों को वेदों के शानदार युग में वापिस ले जायें तथा वर्तमान को प्राचीन के साथ समन्वित करें। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने ओजस्वी भाषण देकर हिन्द्–धर्म को अन्धविश्वासों तथा रूढ़िवादिताओं से मुक्त कराने का प्रयास किया है। वेदों तथा वेदांग के प्रति के प्रति स्वामी जी की अपार श्रद्धा भक्ति थी। वे इनमें मनुष्य की सभी समस्याओं का समाधान ढूँढते थे। वेदों की व्याख्या करने हेतु ही उन्होंने सत्यार्थ प्रकाश, सस्कार विधि, सन्ध्या विधि, वेदादि भाष्य भूमिका आदि कई ग्रन्थ लिखे। 1925 में स्वामी जी द्वारा रचित यजुर्वेद भाष्य और ऋग्वेद भाष्य शीर्षक ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं।

उपनयन संस्कार की दृष्टि से संस्कार विधि और सत्यार्थ प्रकाश का विशेष महत्व है। सत्यार्थ प्रकाश एवं संस्कार विधि शीर्षक ग्रन्थों में उपनयन संस्कार के महत्व एवं विधि विधानों पर प्रकाश डाला गया है।

वर्तमान काल में उपनयन संस्कार केवल ब्राह्मण मात्र के लिए ही रह गया है इस काल में ब्राह्मण ही उपनयन संस्कार विधि–विधान से करते हैं। परन्तु वैश्यादि कुछ जातियों म अभी तक इसकी लकीर अवश्य पीटी जाती है अर्थात् किसी न किसी रूप में उपनयन संस्कार को स्वीकार किया जाता है। इसलिये हम कह सकते हैं कि आधुनिक काल में उपनयन संस्कार को लोकप्रिय बनाने में स्वामी दयानन्द सरस्वती का अविस्मरणीय योगदान रहा है।

संदर्भ

1. अर्थर्ववेद 11.5.3
2. वही 11.5.4
3. मनुस्मृति 2.170।
4. याज्ञवल्वय स्मृति 1.14 पर अपरार्क की व्याख्या।
5. भारूचि सं.हिता1 पेज 334 से।
6. अथर्ववेद 11.5.3 ।
7. शतपथ ब्राहम्ण 2.3.4 ।
8. पारस्कर ग्रहम्सूत्र 2.1.2.3 ।
9. आपस्तब गृहम्सूत्र 1.19,
10. मनु स्मृति 2.36, याज्ञवल्कय स्मृति 1.11 ।
11. पारस्कर गृहम्सूत्र 2.5.36 से 38
12. अल्टेकर, ए. एस. एजुके"ान इन एि"ायेण्ट इण्डिया, भारती विद्याभवन, बंबई 1957, पेज 11–12।
13. पारस्कर गृह्यसूत्र 1.11.24 ।
14. ब्रह्मपुराण 4.12.09।

15. शौनक संहिता 3.6.21 ।
16. बौधायन गृह्यसूत्र 11.5.6
17. ऋग्वेद 5.82
18. बौधायन गृ.सू 2.5.7।
19. शाखायन गृ.सू. 2.2.3 ।
20. गौतम –धर्मसूत्र 1.1.2 ।
21. गौतम गृ.सू. 2,10.35
22. आ"वलायन गृ.सू. 1.22.1 ।
23. वही, 2.2.2 ।
24. पारस्कर गृह्यसूत्र 2.25 ।
25. वही, 2.26,
26. आ"वलायन गृ.सू. 1.19 ।
27. बाधायन गृ.सू. 11.5.6 ।
28. पारस्कर.गृ.सू. 2.4–1.8।
29. हारीत गृ.स. 6.2.19।
30. मनुस्मृति 3.67–75 ।
31. याज्ञवल्क्य स्मृति 1.2 ।
32. गौतम–स्मृति 8.2 ।
33. मनुस्मृति 2.170 ।
34. याज्ञवल्क्य स्मृति 1.15 ।
35. मनुस्मृति, 2.36,
36. याज्ञवल्क्य स्मृति 1.17 ।
37. याज्ञवल्क्य स्मृति 2.36 पर मेधातिथि का भाष्य ।
38. मनुस्मृति 2.44 ।
39. वही 2.170 ।
40. गैरोला ,वाचस्पति भारतीय संस्कृति और कला,हिन्दी ग्रंथ अकादमी, लखनऊ, 1973,पेज 401–402।
41. वही पेज 403 ।
42. वही पेज 407
43. गैरोला, वाचस्पति, संस्कृत साहित्य का इतिहास, चौखम्बा प्रका"ान, वाराणसी, 1968, पेज 118 ।
44. पाण्डेय, राजबली, हिन्दू संस्कार, तृतीय संस्करण, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1978, पेज 148 ।
45. वही पेज 157 ।
46. द्विवेदी, व्रजवल्लभ, भारतीय संस्कृति के मूल तत्व,वि"वविद्यालय प्रका"ान, वाराणसी, 2007, पेज 252
47. वेदश्रमी, पं0 वीरसेन, वैदिक परम्परा, नई सड़क, दिल्ली, 1967, पेज 116
48. द्विवेदी, व्रजवल्लभ, वही, पेज 255
49. पांडेय, डॉ. राजबली, वही, पेज 152
50. ठाकुर, पं0 आद्या, वेदों में भारतीय संस्कृति, सूचना विभाग, उत्तर प्रदे"ा सरकार लखनऊ, 1967, पेज 143